SHODH SAMAGAM
ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

रवीन्द्र कालिया के कथा साहित्य में स्त्री–मुक्ति की अभिव्यक्ति

एकता शुक्ला, शोधार्थी, **शिप्रा द्विवेदी,** पी–एचडी, शोध–निर्देशक, हिन्दी विभाग
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय
शोध–केन्द्र अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, मध्य प्रदेश, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Authors
एकता शुक्ला, शोधार्थी
शिप्रा द्विवेदी, पी–एचडी, शोध–निर्देशक
E-mail : ektashukla58@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 25/12/2025
Revised on : 27/02/2026
Accepted on : 09/03/2026
Overall Similarity : 00% on 28/02/2026

शोध सार

स्त्री स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति का अर्थ स्त्रियों को अपने विचारों, भावनाओं, विश्वासों और निर्णयों को बिना किसी बाहरी दबाव या पितृसत्तात्मक बाधाओं के व्यक्त करने का अधिकार है। यह व्यक्तिगत स्वायत्तता, आर्थिक आत्मनिर्भरता, समान शिक्षा, निर्णय लेने की शक्ति और ऑनलाइन/ऑफ़लाइन हिंसा के बिना अपनी राय रखने की स्वतंत्रता के रूप में प्रकट होती है। 70 के दशक के पश्चात हिंदी कथा साहित्य में आधुनिक स्त्री रूढ़ियों को तोड़ती, आत्मनिर्भर, सचेत और अपनी पहचान तलाशती हुई दिखाई देती है। यह वह दौर था जब राजेंद्र यादव द्वारा संपादित 'हंस' जैसी पत्रिकाओं ने स्त्री–लेखन को बढ़ावा दिया, जिससे महिलाओं की यौनिकता, कामकाजी जीवन, वैवाहिक अलगाव और पितृसत्तात्मक उत्पीड़न जैसे मुद्दों पर मुखर विमर्श शुरू हुआ। आज नारी आत्मनिर्भर हो चुकी है परन्तु स्त्री की मानसिक में अंतर्विरोध देखने को मिलता है, वह मानसिक तौर पर अभी भी पूर्ण रूप से स्वतंत्र और सशक्त नहीं है। आज स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में पुरुषों से आगे बढ़ गई है परन्तु उनके पारिवारिक सम्बन्धों में मधुरता की अपेक्षा है, जो समाजिक एवं नैतिक मूल्यों में परिवर्तन से सम्भव होगी। रवीन्द्र कालिया की कहानियों में पुरुष की आश्रिता स्त्री से लेकर स्वावलंबी एवं कामकाजी स्त्रियों के व्यक्तित्व को स्थान दिया गया है। उन्होंने पाया कि कई समस्याएँ हल हो जाने के बाद और स्त्री सुधार आन्दोलनों के पश्चात भी स्त्री विषयक कुछ समस्याएँ हैं जो आज भी अनुत्तरित हैं।

मुख्य शब्द

रवीन्द्र कालिया, आधुनिक, स्त्री, मुक्ति, स्वतंत्रता.

शोध आलेख

हिन्दी साहित्य भी स्त्री से जुड़े महत्त्वपूर्ण विषयों को लेकर समाज में सुधार की भावना से आगे आया है। ''बीसवीं शती के आरम्भ की स्त्री तथा स्वातंत्र्योत्तर स्त्री के परिवेश के बीच अन्तर की गहरी खाई खुदी हुई है इसलिए अतीतकाल की स्त्री की सामाजिक समस्याएँ आधुनिक परिवेश से नितान्त भिन्नता लिये हुए हैं।''[1]

रवीन्द्र कालिया के कथा–साहित्य में स्त्री जीवन के यथार्थ को उकेरा गया है। रवीन्द्र कालिया के स्त्री विषयक दृष्टिकोण में परम्परागत मान्यताओं को खंडित किया है। कालिया की सृजनात्मकता स्त्री जीवन की यथार्थता एवं सत्यता को उद्घाटित करती है। रवीन्द्र कालिया के साहित्य में स्त्री पात्र अपने अधिकार के लिए, आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए उत्सुक हैं, वह हर संकट व विकट स्थिति से सामना करने के लिए सशक्त रूप से तैयार है। समाज में स्त्री ने महत्त्वपूर्ण दायित्वों को चुनौती समझकर स्वीकार किया है।

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। समाज में स्त्री की स्थिति, उसके स्थान, उसकी वैचारिक स्वतंत्रता, आर्थिक तौर पर आत्मनिर्भरता का असर साहित्य पर होना स्वाभाविक है। रवीन्द्र कालिया जैसे कुशल कलाकार ने समाज के बदलते कलेवर को, स्त्री की उभरती अस्मिता को, पुरुष की संकीर्ण सोच को अपनी रचनाओं में इस मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है, जो पाठक को अन्दर से झंझोर देता है और वह मापदण्डों को बदलने के लिए उत्तेजित हो जाता है। कालिया के स्त्री पात्र मात्र उनकी कल्पना की उपज नहीं अपितु भारत के महानगरों के सामाजिक जीवन की वास्तविकताओं की प्रतिछाया है। रवींद्र कालिया की दृष्टि स्त्री जीवन के करुण यथार्थ को प्रकट करने में सक्षम रही है।

आज की ''आधुनिक विवाहित स्त्री का नौकरी पाने का मुख्य कारण पति की सीमित आय में पारिवारिक जरूरतों की पूर्ति में बाधा आना है, शनैः शनैः उसका कामकाजी रूप अनिवार्यता में परिवर्तित हो रहा है। पति को पत्नी का कामकाजी रूप स्वीकार्य है पर बहुत सी अपेक्षाएँ भी नत्थी हैं। पत्नी परम्परागत रूप में उनके मर्यादित नियंत्रण में रहे तथा नौकरी के बावजूद घर के सभी दायित्व निबाहे अर्थात पति–अहं तुष्टि के लिए पत्नी सजावटी गुड़िया बन सामाजिक आयोजनों में भी साथ जाए तो सही, पर घर के अंदर 'आदर्श–पत्नी' की भान्ति उसकी हर सुख सुविधा के दायरे में रहकर कार्य करें।''[2]

रवीन्द्र कालिया की कहानियों एवं उपन्यासों में स्त्री जीवन के इसी यथार्थ का एवं स्त्री की बदलती हुई भूमिकाओं का गहराई से विश्लेषण किया है। ''जैसे बादलों से निवृत्त जल सागर, नदी, झरना, सीप आदि जिसमें भी पड़ता है वैसा ही रूप धारण कर लेता है। नारी भी परिवेश के अनुकूल व्यक्ति, स्थान विशेष को पाकर यथानुकूल उचित आसन पर प्रतिष्ठित होती है।''[3] माता, पुत्री, पत्नी, बहन आदि स्त्री के सर्वस्वीकृत विभिन्न रूप हैं जिनके बल पर वह सामाजिक दायित्वों का निर्वाह कर पाती है।

रवीन्द्र कालिया ने अपने साहित्य में यही दर्शाया है। यह वह युग था जब युवा साहित्यकार नए विचारों के स्तर पर यथार्थ परिवेश और मनुष्यों के संबंधों को संवेदना के स्तर पर अनुभव कर मानवीय भावनाओं की अनेक परतें उद्घाटित करना चाहते थे। रवीन्द्र कालिया ने अपनी पहली कहानी 'सिर्फ एक दिन' में मध्यवर्गीय जीवन के इसी यथार्थ का चित्रण किया है। इस कहानी में स्त्री के सशक्त रूप 'माँ' को असफल बेरोजगार बेटे की चिंता में डूबा दिखाया है। ''मुझे चुप देखकर माँ ने अपनी बात का लहजा बदल दिया, 'तुम सारे दिन ऊपर बैठे क्या करते रहते हो? न किसी से बात करते हो और न तुम्हें भतीजी पर ही प्यार आता है। ऐसे कितनें दिन चलेगा, माँ का स्वर गीला हो आया था।''[4]

माँ बड़ी मार्मिकता के साथ बेटे को समझाने का प्रयत्न कर रही है और साथ ही बेटे की भावनाओं को समझने का प्रयास कर रही है। वह अपने बेटे की असफलता के दुख में दुखी है। 'सिर्फ एक दिन' कहानी में इतनी यथार्थता और स्वाभाविकता है, जैसे लेखक की अपनी अनुभूतियाँ हों।

इस कहानी में भारतीय स्त्री के दो रूपों को बखूबी दर्शाया गया है। एक 'माँ' जो अपने बेरोजगार बेटे को

देखकर दुःस्वी है और दूसरी 'सरोज' जो आत्मनिर्भर नारी है। वह उस स्त्री का रूप है जो स्वतन्त्रता के पश्चात् स्त्री सशक्तीकरण की ओर अग्रसर है। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने की वजह से अपने आपको पुरुष प्रधान समाज में समानता पर खड़ा हुआ देखती है। ''समानता का सम्बन्ध सिर्फ अर्थ से न होकर सामाजिकता से भी जुड़ा है इसलिए यह समानता बाहर से लेकर घर तक की आवश्यकता से भी जुड़ी है इसलिए यह समानता बाहर से लेकर घर तक की आवश्यकता बन गयी है। स्त्री–वर्ग भी इस चेतना की अनुभूति कर रहा है और अपने घर में अपने पति के साथ भी समानता की स्पष्ट अपेक्षा रखती है।''[5]

आर्थिक दृष्टि से आत्म निर्भर होने पर नारी में आया परिवर्तन समाज का एक ऐसा यथार्थ है जिसे समाज न चाहते हुए भी स्वीकार करने के लिए बाध्य है। स्त्री में आए परिवर्तन से समाज पर पड़ रहे असर के दोनों पहलुओं को दर्शाया गया है। जहाँ एक तरफ स्त्री को नौकरी के लिए परिवार से दूर अकेले रहने की मुसीबतों का सामना करना पड़ता है वहीं दूसरी ओर आर्थिक तौर पर स्वावलम्बी होने के कारण वह अपने आपको पुरुष समाज में डटकर खड़े होने में सक्षम पाती है। ''मैं अपनी जेब टटोलता कि इतने में सरोज ने दस का एक नया नोट प्लेट में रख दिया और उसके चेहरे का फीकापन जाता रहा। मैंने जेब से हाथ नहीं निकाला और ऐप्लिकेशन के कागजों को अंगुलियों से गिनता रहा।''[6]

इस कहानी में रवीन्द्र कालिया ने स्त्री के आर्थिक स्वावलम्बी और मानसिक स्वतन्त्रता का मर्मस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत किया है। बेरोजगार युवक चाहकर भी बिल न अदा कर सका और 'एप्लिकेशन' के कागजों को गिनता रहा। इस कहानी में सरोज का चरित्र एक आत्मनिर्भर, आधुनिक स्त्री का है जो नौकरी करना इसलिए जरूरी समझती हैं क्योंकि वह किसी पर निर्भर नहीं होना चाहती, चाहे अकेले कितनी ही मुसीबतों का सामना करना पड़े।

''आज की स्त्री चेतना सम्पन्न हो रही है। अपने शोषण के खिलाफ उसे बहुआयामी संघर्ष से गुजरना पड़ रहा है। उसे पति, घर–परिवार, बच्चों, माता–पिता, समाज सबों से पुरुषप्रधानता के खिलाफ लड़ना पड़ रहा है। वह पुरुषों की बराबरी में स्वयं को लाने की चेष्टा में विरोध से लेकर विद्रोह की प्रक्रिया से गुजरने के लिए विवश हो गयी है। सामाजिक, धार्मिक रस्म–रिवाज सबों से उसे टक्कर लेना पड़ रहा है।''[7]

हिन्दी कथा साहित्य में आधुनिकता को एक विद्रोह के रूप में स्वीकार किया गया है। विद्रोह परम्पराओं से, विद्रोह रुढ़िवादी मान्याताओं से, विद्रोह जीवन से, और विद्रोह सम्भवतः आस्था से भी, पर यह तो एक वर्ग का चिन्तन था, जिसने इस विद्रोह को सब कुछ मानकर संत्रास, कुण्ठा, अव्यवस्था एवं मरणशीलता के गीत गाए। किंतु दूसरे वर्ग का चिन्तन जो वस्तुतः ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में आधुनिकता का चिन्तन था।

आज की आधुनिक स्त्री आत्मनिर्भर है परन्तु ऐसा नहीं है कि उसे समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ता ''नौकरीपेशा स्त्री को घर के दायरे से बाहर निकल विभिन्न प्रकार की परिवेशगत समस्याओं से जुझने की मजबूरी है।''[8] रवीन्द्र कालिया ने भी अपने साहित्य में स्त्री का दबा हुआ, सहमा हुआ रूप ही नहीं, बल्कि स्त्री का आधुनिक तथा अत्याधुनिक रूप भी चित्रित किया है।

आधुनिक परिवेश ने यद्यपि स्त्री को शिक्षित और जागरूक करके स्वातन्त्रय तो प्रदत्त कर दिया पर साथ ही अनेक समस्याओं की लम्बी फेहरिस्त भी थमा दी। शारीरिक सुख–सुविधाएँ तो मिली लेकिन उसका भावात्मक व मानसिकः स्तर पर शोषण अबाधित जारी है। स्वयं को अंश भर भी सुरक्षा का मुलायम एहसास नहीं सौंप पाती। कामकाजी स्त्री के रूप में सामाजिक व पारिवारिक उलझनों के साथ–साथ बहुधा उसे ऐसी समस्याएँ भी झेलनी पड़ती हैं जो निजी मानसिकता से निःसृत होने लगती है।

समय बदलने के साथ स्त्री में भी परिवर्तन आया है। बड़े–बड़े शहरों में स्त्री अत्याधुनिकता की दौड़ में शामिल हो चुकी है तथा नए मूल्यों को बिना सोचे–समझे अपनाने के कारण उसे उसके दुष्परिणामों को भी झेलना पड़ा है। इसका सजीव चित्रण रवीन्द्र कालिया की 'हथकड़ी' कहानी तथा 'ए.बी.सी.डी' लघु उपन्यास में मिलता है।

कालिया के 'ए.बी.सी.डी' उपन्यास में नेहा और शीनी पाश्चात्य सभ्यता में पली–बढ़ी होने के कारण उन पर

पाश्चात्य सभ्यता का बहुत प्रभाव है। उसी घर में भारतीय संस्कारों में पली शील पर विदेश जाने के बाद भी भारतीय संस्कारों की छाप है परन्तु दोनों बेटियों में भारतीय संस्कार दूर–दूर तक नज़र नहीं आते। शील अपनी बेटियों के अत्याधुनिक व्यवहार से सदा चिंतित रहती है। उसे यह महसूस होता है कि उसकी बेटियाँ भटकाव की तरफ है, यह भटकाव केवल यौवन का भटकाव नहीं है, संस्कृति का भी भटकाव है। उसे हमेशा यह डर लगता है कि उसकी बेटियाँ कहीं कोई गलत कदम ना उठा लें, परन्तु जो उसकी नज़र में गलत कदम है वह उसकी बेटियों की नज़र में जिंदगी तथा खुलापन है।

निष्कर्ष

रवीन्द्र कालिया ने अपने कथा–साहित्य में स्त्री जीवन के यथार्थ को उकेरा है। उनके स्त्री पात्र अपने हक के लिए, आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए हर प्रकार की स्थिति का समान करने के लिए तैयार हैं, उन्होंने महत्त्वपूर्ण दायित्वों को चुनौती समझ कर स्वीकार किया है। पुरुष की संकीर्ण सोच, और शक के स्वभाव को नारी पात्रों ने गहनतम स्तर तक झंझोड़ दिया है। एक आटे की चक्की के मालिक का पत्नी से दुर्व्यवहार और शक, गुलाबदई को आत्मनिर्भर बना देता है। वह अपने पति से अलग रहकर चाट का खोमचा लगा कर जीवन यापन करने लग गई परन्तु अपनी अस्मिता पर चोट उससे बर्दाशत नहीं हो पाई। कालिया जी ने संवेदना के स्तर पर, स्त्री की भावनाओं का मनोविश्लेषणात्मक ढंग से चित्रण किया है। उनकी दृष्टि स्त्री जीवन के करूण यथार्थ को रेखांकित करने में भी सक्षम रही है।

रवीन्द्र कालिया की अपनी सफलता के पीछे भी ममता कालिया का हाथ है, ''यदि में थोड़ी मैनेज्ड नहीं होती तो ना ये घर होता, ना मेरे बच्चे पढ़ते और न ही आप रवीन्द्र कालिया को इस रूप में देख पाते जिस रूप में आज वे दिख रहे हैं।''[9]

संदर्भ सूची

1. सिन्हा, रघुवीर (1977) *आधुनिक हिन्दी कहानीः समाज शास्त्रीय दृष्टि,* अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 92।
2. जेठी, आशु (2005) हिमाचल के हिन्दी में नारी परिवेश का चित्रण, शोध–प्रबंध, चण्डीगढ़ पंजाब विश्वविद्यालय, 2005, पृष्ठ 101।
3. वीरेन्द्रा, इंदु (2008) *साठोत्तरी कहानी में परिवार,* संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 26।
4. कालिया, रवीन्द्र (2008) *रवीन्द्र कालिया की कहानियाँ* (सिर्फ एक दिन), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 55।
5. बाला, किरण (1988) *समकालीन हिन्दी कहानी और समाजवादी चेतना,* अनुभव प्रकाशन, कानपुर, पृ. 168।
6. कालिया, रविन्द्र (2008) *रवीन्द्र कालिया की कहानियाँ* (सिर्फ एक दिन), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 56।
7. जेठी, आशु (2005) हिमाचल के हिन्दी उपन्यास में नारी परिवेश का चित्रण, शोध–प्रबन्ध, चण्डीगढ़ पंजाब विश्वविद्यालय, 2005, पृ. 104।
8. जेठी, आशु (2005) हिमाचल के हिन्दी उपन्यास में नारी परिवेश का चित्रण, शोध–प्रबन्ध, चण्डीगढ़ पंजाब विश्वविद्यालय, पृ. 105।
9. अनुज (2009) रवीन्द्र कालिया, ममता कालिया और मैं, *लमही,* लखनऊ, अंकः 5, वर्ष, जुलाई–सितम्बर, 2009, पृ. 77।

****